

प्रेमोपहार



● श्रीराम शर्मा आचार्य

❧ प्रेमोपहार ❧

श्री _____

आपके जन्मदिन की वर्षगाँठ पर ऋषि सत्ता के
संदेश के रूप में यह पुस्तक सप्रेम/भेंट

भेंटकर्ता



=== विशेष ज्ञातव्य ===

आपका अगला जन्मदिन निकट ही आ रहा है। उस मंगलमय अवसर पर हम अपने परिवार के समस्त परिजनों की ओर से हार्दिक शुभकामना भेजते हैं।

आप अपना जन्मदिन उत्साहपूर्वक वातावरण में मनाने की अभी से तैयारी करें। युग निर्माण शाखा के सदस्यों तथा अपने निजी मित्र परिजनों को अभी से आमंत्रित करें और एक छोटा धर्मोत्सव निर्धारित विधि-विधान के साथ नियोजित करें। जन्मदिन मनाने की परंपरा आपके प्रियजनों में चल पड़े, इसके लिए आपको विशेष रूप से संगठित प्रयत्न करना चाहिए। ये आयोजन व्यक्ति निर्माण के उद्देश्य को पूर्ण करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करेंगे।

आप हमारे परिवार के परम प्रिय एवं अति निकटवर्ती सदस्य हैं। आपके जन्मदिन पर हम अपने पूजा कक्ष में आपके उज्ज्वल भविष्य के लिए विशेष रूप से प्रार्थना करेंगे। अतः आप से यह आशा की जाएगी कि आप अपने जीवनोद्देश्य पर विशेष रूप से मनन करेंगे और शेष जीवन के लिए एक ऐसी कार्य-पद्धति निर्धारित करेंगे, जो आपके लिए, समस्त समाज के लिए और हमारे लिए गर्व-गौरव एवं संतोष-उल्लास का कारण बने।

इस प्रेमोपहार पुस्तिका को ऋषि सत्ता का विशेष संदेश एवं हमारा अनुरोध समझें। जन्मदिन आने से पूर्व इसे कई बार पढ़ें और उस दिन तो एकांत में बैठकर इसकी प्रत्येक पंक्ति का विशेष रूप से चिंतन-मनन करें और प्रस्तुत प्रेरणा के अनुरूप भावी गतिविधियाँ निर्धारित करने का प्रयत्न करें। यह पुस्तक अपने पास अधिक संख्या में मँगाकर रखें और अपने इष्ट-मित्रों, परिचितों एवं स्नेहीजनों को उनके जन्मदिन पर उपहार स्वरूप भेंट करें।

इस शुभ अवसर पर आपके उज्ज्वल भविष्य के लिए पुनः पुनः हमारी भावभरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

जन्मदिन का संदेश

मनुष्य जन्म भगवान का सबसे बड़ा उपहार है। सृष्टि में लाखों, करोड़ों योनियाँ हैं, धरती पर रहने वाले, आकाश में उड़ने वाले और जल में निवास करने वाले अगणित प्रकार के पशु-पक्षी, कीट-पतंग, जीव-जंतु इस संसार में रहते हैं। उनमें से किसी को भी वे सुविधाएँ नहीं मिलीं जो मानव-प्राणी को प्राप्त हैं। व्यवस्थित रीति से बोलने और सुसंगत रूप से सोचने की क्षमता मनुष्य के अतिरिक्त और किसी को नहीं मिली है। शरीर यात्रा की समस्या को सुलझाने में ही अन्य प्राणी अपना समस्त जीवन व्यतीत करते हैं, फिर भी आहार, निवास एवं सुरक्षा की उलझनें बनी ही रहती हैं। अपने समाज में पारस्परिक सहयोग से भी उन्हें वंचित रहना पड़ता है। अनेक प्रकार की जो सुविधा-सामग्री मनुष्य को प्राप्त है वह उन बेचारों के भाग्य में कहाँ हैं ? बुद्धि का विकास न होने से विचारणा एवं भावना क्षेत्र में मिल सकने वाले उल्लास-आनंदों से तो एक प्रकार से वे वंचित ही हैं। उनकी तुलना में मनुष्य कितना अधिक सुखी और साधन संपन्न है। इस पर बारीकी से विचार किया जाए तो यही प्रतीत होता है कि भगवान ने हमें सृष्टि का सर्वोच्च प्राणी बनाया है और सर्वोपरि साधन-सुविधाएँ प्रदान की हैं।

मनुष्य की तुलना में देवताओं की क्षमता और सुविधा बढ़ी-चढ़ी मानी जाती है। धरती की तुलना में स्वर्ग में आनंद-उल्लास के साधन अधिक हैं। इस मान्यता के कारण मनुष्य की लालसा यह बनी रहती है कि उसे इस जन्म के बाद देवयोनि प्राप्त हो, स्वर्ग में जाने का अवसर मिले। देवताओं जैसा, स्वर्ग जैसा आनंद धरती के मनुष्यों को प्राप्त नहीं इसलिए अधिक सुखी बनने की स्वाभाविक इच्छा के अनुरूप यह सोचना उचित ही है कि हमें स्वर्गीय जीवन जीने का अवसर मिले। जिस प्रकार स्वर्ग-सुख की बात सोच कर हमारे मुँह में पानी भर आता है उसी प्रकार सृष्टि के अन्य समस्त प्राणी यदि सोच सकते होंगे तो यही सोचते होंगे कि कभी हमें भी मनुष्य बनने का और उसे जो सुविधाएँ प्राप्त हैं, उन्हें

उपभोग करने का अवसर मिले। समूची सृष्टि के अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य जीवन के सुख का मूल्यांकन किया जाए तो उससे कहीं अधिक अंतर मिलेगा जितना मनुष्य और देवताओं के बीच है। देवता तो शरीर की दृष्टि से लगभग मनुष्यों के स्तर के ही माने जाते हैं, उन्हें केवल कुछ सुविधा-साधन अधिक प्राप्त हैं। पर कीट-पतंगों और तुच्छ जीवों की तुलना में मनुष्य जीवन का अंतर बहुत अधिक है। इसलिए किसी अन्य योनि के प्राणी को यदि मनुष्य योनि मिले तो उसे जो अधिक आनंद मिलेगा वह मनुष्य के स्वर्ग पहुँचने या देवता बनने के आनंद से लाखों, करोड़ों गुना अधिक होगा। वह जीव मनुष्य योनि में प्रवेश करते ही अपने सौभाग्य की इतनी अधिक सराहना करेगा जो हमें स्वर्ग मिलने की तुलना में निश्चय ही अप्रत्याशित रूप से अधिक होगी।

यों छुट-पुट अभाव, असुविधाएँ और कठिनाइयाँ मनुष्य जीवन में भी बनी रहती हैं और कितने ही मनुष्य उस तिल को ताड़ बना कर निरंतर दुःखी भी बने रहते हैं। इतने पर भी यदि विशाल दृष्टि से देखा-सोचा जाए तो प्रतीत होगा कि दुःखी-दरिद्र समझा जाने वाला व्यक्ति भी अन्य जीव जंतुओं की तुलना में अधिक सुखी है। इसी से हम अपने को अत्यधिक प्यार करते हैं और वयोवृद्ध, अशक्त एवं रुग्ण होने पर भी मरने की बात नहीं सोचते।

• आध्यात्मिक मान्यताओं के अनुसार मनुष्य जन्म चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के बाद एक बार मिलता है। यह उसकी परीक्षा का समय होता है। वह ऊँचा उठने, आगे बढ़ने और अधिक ऊँची स्थिति में पहुँच सकने लायक है या नहीं, इसी बात की परीक्षा देने के लिए जीव मनुष्य शरीर में आता है। यदि इस परीक्षा में सफल हुआ तो उसे आगे की उच्च स्थिति में स्वर्गादि देव योनि प्राप्त करने का अवसर मिलता है अन्यथा वह फिर पुरानी कक्षा में वापस लौटा दिया जाता है।

हवाई जहाज चलाने की 'पायलट' परीक्षा के समय किसी उड़ाके के हाथ में जहाज सौंपा जाता है, वह उड़ान करके दिखाता है। यदि सही काम कर सका तो उसे आगे भी जहाज उड़ाने की नौकरी मिल जाती है, अनुत्तीर्ण होने पर वह जहाज छीन लिया जाता है जो उड़ान करने के समय मिला था। फिर उसे उसी स्कूल में उसी कक्षा में वापस चला जाना पड़ता है जिसमें पायलट बनने की शिक्षा दी जाती है। ठीक इसी प्रकार अन्य

योनियों की कक्षाएँ हैं जिनमें लंबी अवधि तक जीव को पढ़ना पड़ता है। परीक्षा काल की तरह चंद वर्षों का मानव जीवन मिलता है। भगवान उसकी प्रत्येक गतिविधि को बड़ी बारीकी से देखता है, उसकी विचारणा और क्रिया-पद्धति को परखता है। इसी आधार पर वह नंबर देता चलता है। यह नंबर यदि उत्तीर्ण होने योग्य होते हैं तो उसे आगे बढ़ने की, अधिक ऊँची स्थिति प्राप्त करने की सुविधा मिलती है। अन्यथा अनुत्तीर्ण होने पर उसे उसी पिछली कक्षा में अधिक अभ्यास करने के लिए वापस भेज देता है, नीच योनियों में ढकेल देता है।

संसार का एक निश्चित नियम है कि जैसे-जैसे स्तर उठता है, पदोन्नति होती है, वैसे-वैसे ही उसके कंधों पर जिम्मेदारी अधिक आती है। चपरासी की तुलना में अफसर की, सैनिक की तुलना में कप्तान की, बच्चे की तुलना में प्रौढ़ की, नागरिक की तुलना में नेता की और पशु की तुलना में मनुष्य की जिम्मेदारी अधिक है। पदोन्नति का आधार ही अधिक उत्तरदायित्व वहन कर सकने की क्षमता है। पशु कोई नैतिक एवं सामाजिक मर्यादा पालन करने के लिए बाध्य नहीं, वे नंग-धड़ंग फिरते रहते हैं, अश्लील चेष्टाएँ खुले आम करते हैं, पराई वस्तु खाने में संकोच नहीं करते, पर मनुष्य को इस प्रकार का व्यवहार करने की छूट नहीं है। विद्यार्थियों की उच्छृंखलता उपेक्षणीय हो सकती है, पर यदि प्राध्यापक लोग वैसी अनुशासनहीनता बरतें तो यह बहुत बुरी बात होगी। मनुष्य जिस प्रकार की संकीर्णता और स्वार्थपरता बरतते हैं वैसी ही यदि इंद्र, वरुण, वायु, अग्नि, सूर्य, चंद्र आदि बरतने लगे तो इस सृष्टि का क्रम क्षणभर में अस्त-व्यस्त हो जाए। बड़प्पन निश्चय ही एक बड़ी जिम्मेदारी लेकर आता है। और फिर उसमें थोड़ी भी भूल बड़ी घातक होती है। नेताओं की भूलें किसी समाज या राष्ट्र के लिए विघातक हो सकती हैं जबकि साधारण नागरिक की भूलें उसके अपने सीमित क्षेत्र में ही दुष्परिणाम उत्पन्न करती हैं। इसलिए बड़ों की छोटी गलतियाँ भी उन्हें भारी दंड भोगने की स्थिति में पहुँचा देती हैं। फौजी कप्तान छोटी लापरवाही करने पर गोली से उड़ा दिया जाता है। गलती करने वाले शासक की भी ऐसी ही दुर्गति होती है।

हमें अपनी वास्तविक स्थिति समझनी चाहिए। बुद्धिमान समझे जाने वाले मनुष्य की सबसे बड़ी मूर्खता यही एक है कि वह अपनी

वस्तुस्थिति समझने में भूल करता रहता है। विचारने की बात है कि जब सभी प्राणी भगवान के पुत्र हैं, वह सब का पिता है, सबको समान प्यार करता है, न्यायकारी, निष्पक्ष और समदर्शी है तो फिर मनुष्य को अधिक सुविधाएँ क्यों दीं जबकि सृष्टि के अन्य समस्त प्राणी उससे वंचित हैं? कोई मनुष्य पिता जब अपने बच्चों को लगभग समान सुविधा देता है तब भगवान अपनी संतान को ऐसी स्थितियों में क्यों रखता है जिनमें जमीन आसमान का अंतर है? इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिए बैंक चपरासी तथा बैंक मैनेजर की स्थिति को समझना होगा। मैनेजर को बैंक अधिक वेतन और अधिक सुविधाएँ इसलिए देती है ताकि वह अधिक बड़ी जिम्मेदारी को ठीक तरह निबाह सके। लाखों रुपया बैंक मैनेजर के दस्तखतों से क्षणभर में इधर-उधर हो सकता है, इसी से ऊँचा पद एवं ऊँचा वेतन प्राप्त करता है। पुलिस सुपरिंटेंडेंट, कलक्टर आदि अफसरों के हाथ बड़े अधिकार रहते हैं। वे उन अधिकारों को स्वार्थपरता की पूर्ति के लिए स्वच्छंदतापूर्वक उपयोग करने लगे तो संकट उत्पन्न हो जाए। बैंक मैनेजर सारे खजाने को अपने निज की संपत्ति मान लें और उसे स्वच्छंदतापूर्वक खर्च कर डालें तो मुसीबत खड़ी हो जाए।

मोटी दृष्टि से कहा जा सकता है कि बैंक संचालकों ने चपरासी के हाथ में एक छोटा सा हथियार थमा दिया और मैनेजर के हाथ में लाखों रुपयों से भरे खजाने की चाभी दे दी। यह अन्याय एवं पक्षपात हुआ। पर बारीकी से सोचने पर स्पष्ट हो जाता है कि इसमें अन्याय जैसी कोई बात नहीं है। जो जिम्मेदारियाँ उनके कंधों पर हैं उन्हीं की पूर्ति के लिए अधिकार मिले हैं। इन अधिकारों को अपने निज के लिए उपयोग करने की छूट उन्हें नहीं है। अपने लिए तो वे अपने निर्वाह भर को आवश्यक मात्रा में सीमित वेतन ही प्राप्त कर सकते हैं। अपरिमित साधन एवं अधिकार जो उन्हें मिले हैं वे विशुद्ध रूप से जनहित के लिए ही हैं। निर्धारित वेतन से अधिक मात्रा में कोई बैंक मैनेजर अपने अधिकार के खजाने में से खर्च करने लगे तो उसे न्यायालय द्वारा कठोर दंड का भागी बनना पड़ेगा।

हम मानव प्राणी कहने को तो मनुष्य हैं पर जीवन की वस्तुस्थिति को समझने में भारी भूल करते रहते हैं। हम समझते हैं कि जो कुछ सुविधाएँ प्राप्त हैं वे विशुद्ध रूप से हमारे निज के उपयोग के लिए हैं। सृष्टि के अन्य प्राणियों की तुलना में हमें जो अधिक सुविधापूर्वक स्थिति

मिली हुई है, उसका उपयोग हमें अपनी निज की वासनाओं एवं इच्छाओं की पूर्ति में ही करना चाहिए। किया भी यही जाता है। औसत मनुष्य की आकांक्षाओं और गतिविधियों का लेखा-जोखा लिया जाए तो यही दृष्टिगोचर होगा कि वह अपने सीमित स्वार्थ की परिधि में ही सोचता है, उसकी आकांक्षाएँ इंद्रिय सुखों अथवा लोभ, मोह एवं अहंकार से भरी तृष्णाओं की पूर्ति तक सीमित हैं। वह जो कुछ सोचता है, जो कुछ करता है, वह इसी धुरी पर घूमता है। यह अपना स्वार्थ एक छोटी परिधि तक और आगे बढ़ सका तो वह अपनी स्त्री तक इसके बाद बच्चों तक बढ़ जाता है। पूरे परिवार तक भी वह नहीं फैल पाता। माता-पिता, भाई-बहन, चाचा-ताऊ, भाभी-भतीजे, बुआ, दादी आदि घनिष्ठ कुटुंबियों तक भी वह स्वार्थ बढ़ नहीं पाता। संबंधित स्वजनों तक से बहुत बार बहुत हद तक वह स्वार्थपूर्ण व्यवहार करता है।

क्या यही मनुष्य का उत्तरदायित्व है? क्या इसी घृणित स्थिति का परिचय देने के लिए भगवान ने उसे अन्य प्राणियों की तुलना में इतनी अधिक सुविधाजनक स्थिति प्रदान की है? यह एक महत्वपूर्ण एवं विचारणीय प्रश्न है। इस प्रश्न को हल करने पर ही मानव-जीवन की सफलता असफलता निर्भर है। जन्म दिन का सबसे बढ़िया और सबसे उत्तम उपयोग यही हो सकता है कि उस दिन हम अपनी सारी बुद्धिमत्ता, सारी दूरदर्शिता, सारी प्रतिभा और सारी मनोभावना को इसी समस्या को हल करने में लगावें।

दैनिक जीवन में आने वाली छुट-पुट समस्याओं के उचित समाधान में हम कितनी तत्परता एवं बुद्धिमत्ता का परिचय देते हैं, बड़ी-बड़ी उलझनों को जिस चतुरता के आधार पर हम हल कर लेते हैं, उसी प्रकार क्या हम 'जीवनोद्देश्य और उसकी सफलता' के प्रश्न को हल नहीं कर सकते? निश्चय ही कर सकते हैं। हुआ यह है कि कभी इस संबंध में विचार ही नहीं किया गया। बाहरी बातों पर सोचा विचारा गया, पर आत्मोद्देश्य की ओर कभी दृष्टि ही नहीं डाली गई। यदि थोड़ा ध्यान इस ओर भी दिया गया होता तो स्थिति दूसरी होती। तब आज की अपेक्षा हम बहुत आगे बढ़े हुए और ऊँचे उठे हुए स्तर पर होते।

हमारे समाज में हँसी-खुशी के अनेक त्योहार प्रचलित हैं। होली, दिवाली, दशहरा आदि अवसरों पर बहुत खुशी मनाई जाती है, घरों की

सजावट, नए कपड़े, बढ़िया भोज, मेला, ठेला, दीपदान, रंग-गुलाल, मित्र-मिलन, उपहारों का आदान-प्रदान आदि अनेक हर्षोल्लास भरे क्रिया कलाप होते हैं। यह त्योहार किसी बड़ी सफलता की स्मृति में मनाए जाते हैं। लंका विजय करके रामचंद्र जी सफलतापूर्वक अयोध्या वापस आए थे तब जनता ने खुशी के दीप जलाए थे और दिवाली आरंभ हुई थी। प्रह्लाद ने अग्नि परीक्षा में सफलता पाई और नृशंस असुर हिरण्यकशिपु को नृसिंह भगवान ने परास्त किया था, उसी धर्म विजय का उल्लास भरा पर्व होली है। शुभ-निशुंभ, मधु-कैटभ, महिषासुर आदि असुरों को नष्ट कर भगवती दुर्गा ने जब विजय ध्वजा फहराई थी तब विजयादशमी आरंभ हुई। राम का जन्म रामनवमी, गंगा, गायत्री का जन्म गंगा दशहरा, कृष्ण जन्म जन्माष्टमी, गीता जयंती, सरस्वती जन्म बसंत पंचमी, शिव जन्म शिवरात्रि के नाम से विख्यात हैं। अन्य देवताओं, ऋषियों और महापुरुषों की जयंतियाँ भी इसी प्रकार मनाई जाती हैं। इस प्रकार की महान आत्माओं का अवतरण मानव जाति के लिए एक बड़े सौभाग्य का आधार सिद्ध होता रहा है। अतएव उस सफलता को स्मरण रखने के लिए यह पर्व त्योहार प्रचलित है।

मानव-जीवन में हमारा अपना अवतरण भी एक ऐसी ही बड़ी सफलता है। चौरासी लाख योनियों के अभाव, असुविधा एवं कष्टसाध्य क्रम से भरे अंधकार को परास्त कर जिस दिन मनुष्य शरीर जैसे अनुपम सौभाग्य को प्राप्त किया गया वह दिन अपने लिए निश्चित रूप से भारी सफलता का, असाधारण विजय का महान पर्व है। समष्टि की दृष्टि से देवताओं एवं महापुरुषों की जयंतियाँ, उनकी विजय विभूतियाँ जितनी महत्वपूर्ण हैं अपनी व्यक्तिगत दृष्टि से अपना छोटा सा अवतरण भी उतना ही मंगलमय है। हमारी निज की सफलता का, निज की विजय का, इससे बड़ा महान पर्व दूसरा नहीं हो सकता। निस्संदेह अपना जन्मदिन अपने लिए सबसे बड़ी खुशी का दिन है और जिस प्रकार हर वर्ष सामाजिक त्योहार मनाए जाते हैं उसी प्रकार हमें अपना, अपने प्रियजनों का जन्मदिन मनाना चाहि। ससार भर के सभ्य देशों में यह प्रथा प्रचलित है। जन्मदिन के लिए सभ्य समाज का हर सदस्य साल भर तक तैयारी करता रहता है और उस दिन अपने समाज में प्रचलित प्रथाओं के अनुसार एवं निजी स्थिति के अनुरूप उसे एक हर्षोत्सव के रूप में मनाता

है। अपने देश में भी यह प्रचलन सदा से था। मध्यकालीन अंधकार भरी अव्यवस्था में जहाँ हमने अपनी अनेक विशेषताएँ खोई वहाँ इस प्रेरणा पर्व का स्वरूप भी भूल गए। अब समय आ गया कि उस महत्त्वपूर्ण परंपरा का पुनः प्रचलन किया जाए।

जन्मदिन के अवसर पर मित्र-मिलन, दीपदान, जलपान, पुष्पोहार, गायन-वादन, परिभ्रमण, गृह-सज्जा, हवन, पूजन जैसी विधि व्यवस्था अपनी परिस्थिति के अनुरूप बनाई जा सकती है। जन्मदिन का एक धार्मिक कर्मकांड भी है। उसका विधि-विधान और उस विधान की व्याख्या 'जन्म दिवसोत्सव कैसे मनाएँ' पुस्तिका में छापी जा चुकी हैं। यह पुस्तक मथुरा से मँगाई जा सकती है और उस दिन का धार्मिक क्रियाकल्प बड़े आकर्षक एवं प्रेरणाप्रद ढंग से किया जा सकता है। इस प्रकार के आयोजन जन्मदिन वाले व्यक्ति के जीवन में प्रेरणा भरने और उस उत्सव में सम्मिलित व्यक्तियों को प्रकाश देने वाले सिद्ध होते हैं। व्यक्ति और समाज के भव्य नव-निर्माण में इन आयोजनों से बड़ी प्रगति हो सकती है। इसलिए हममें से हर एक का प्रयत्न यह होना चाहिए कि अपना जन्मदिन तो उल्लासपूर्ण वातावरण में मनाएँ ही साथ-साथ अपने अन्यान्य मित्रों को भी उसके लिए अवश्य प्रेरणा दें।

जन्मदिन के अवसर पर प्रबुद्ध व्यक्तियों के द्वारा "मानव-जीवन का उद्देश्य और उसकी सफलता का मार्ग" विषय पर प्रेरणाप्रद प्रवचन कराने की व्यवस्था बनानी चाहिए। इन आयोजनों से जीवन का स्वरूप, जीवन का उद्देश्य, जीवन का सदुपयोग और उसकी सफलता का मार्ग जानने में भारी सहायता मिलेगी और यदि भूला हुआ मनुष्य अपने लक्ष्य की दिशा में सुव्यवस्थित रीति से चल पड़ा तो इस संसार का, समाज का, संस्कृति का स्वरूप ही बदल जाएगा और धरती पर स्वर्ग अवतरण की, युगनिर्माण की संभावना बढ़ेगी।

जिसका जन्मदिन मनाया जाए उसके लिए यह आवश्यक है कि एकांत में बैठकर आत्मचिंतन करे अपने आप से यह प्रश्न पूछे कि (१) उसके जीवन का उद्देश्य क्या है? (२) क्या वह उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उचित प्रयत्न कर रहा है? (३) यदि नहीं, तो उस भूल को कैसे सुधारा जाए? इन तीन प्रश्नों पर जितनी ही गहराई के साथ सोचा जाएगा, जितना ही सही उत्तर ढूँढ़ निकाला जाएगा, जितना

ही साहस भूलों को सुधारने के लिए एकत्रित किया जा सकेगा, उतना ही जन्मदिन मनाने का वास्तविक उद्देश्य पूरा होता चलेगा। त्योहार खाली हा-हा, ही-ही करने के लिए, धमाचौकड़ी के लिए नहीं मनाए जाते, वरन उनके पीछे एक प्रेरणा छिपी रहती है। उस संदेश को सुनना, समझना, हृदयंगम करना ही इन आयोजनों का वास्तविक उद्देश्य होता है। बाह्योपचार तो उस प्रयोजन को कलात्मक, आकर्षक, मनोरंजक एवं ग्राही बनाने के लिए होता है। हमारा यह जन्मदिन का हर्षोल्लास भी सोद्देश्य हो। आयोजन को कलात्मक बनाया जाए, पर यह ध्यान में रखा जाए कि एकांत में बैठकर आत्मचिंतन एवं आत्मनिरीक्षण करना और आत्मनिर्माण एवं आत्मविकास के लिए योजनाबद्ध भावी कार्यक्रम बनाना ही इस आयोजन का वास्तविक प्रयोजन है। यह प्रयोजन जितना पूरा हो सके, समझना चाहिए कि जन्मदिन मनाना उतना ही सार्थक हो गया है।

उपर्युक्त तीन प्रश्नों का हल हमें इस आधार पर निकालना चाहिए कि न्यायकारी समदर्शी, निष्पक्ष, नियमबद्ध परमात्मा ने सृष्टि के अन्य समस्त प्राणियों की तुलना में मनुष्य को इतनी विशेषताएँ, इतनी विभूतियाँ, इतनी सुविधाएँ क्यों प्रदान कीं? इस सृष्टि का सारा क्रिया कलाप परिपूर्ण नियमबद्धता और विवेकशीलता के आधार पर, नीति और धर्म के आधार पर चल रहा है। मनुष्य को निरुद्देश्य वे सुविधाएँ नहीं मिल सकती हैं जो आज उपलब्ध हैं। मनुष्य को मिली हुई सुविधाओं के पीछे उसका कुछ विशेष प्रयोजन होना चाहिए। भगवान ने अपनी सृष्टि को सुंदर, सुखी, सुव्यवस्थित एवं सुविकसित बनाने के लिए अपने एक विशेष सहायक के रूप में, कारगर औजार के रूप में मनुष्य का सृजन किया और उसके ऊपर यह उत्तरदायित्व सौंपा कि वह संसार को अधिक सुरम्य, अधिक सरस बनाने के लिए अपनी प्रतिभा का उपभोग करे। यही मानव की अनेक विशेषताओं से भरे-पूरे जीवन का एकमात्र उद्देश्य है।

मनुष्य की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को परमात्मा ने इतना सीमित रखा है कि वे बड़ी आसानी से थोड़े ही समय और श्रम में उपार्जित की जा सकती हैं। अन्य प्राणियों को वहाँ भटकना पड़ता है जहाँ उनका आहार, जल एवं निवास उपलब्ध हो सके। बेचारे इसी एक आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपना सारा समय और श्रम खर्च करते रहते हैं। किंतु

मनुष्य को इसके लिए भटकना नहीं पड़ता। सभी सुविधा सामग्री सहज ही सस्ते में एक स्थान पर मिल जाती हैं। इसके लिए यत्र-तत्र भटकना नहीं पड़ता। मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक परिश्रम का मूल्य भी इतना अधिक है कि हर कोई अपने निर्वाह का प्रश्न बड़ी आसानी से हल कर सकता है। आधा सेर अनाज, दस गज कपड़ा, एक बिस्तर, सिर ढकने को छाया-इतनी मात्र ही तो स्वाभाविक आवश्यकताएँ हैं। गृहस्थ बसाया जाए तो स्त्री को भी वह क्षमता प्राप्त है कि अपना पेट स्वावलंबनपूर्वक पाल ले। छोटे बच्चों की थोड़ी सी आवश्यकताएँ माता-पिता मिलकर बड़ी आसानी से पूरी कर सकते हैं। घने जंगलों की साधन-विहीन परिस्थितियों में भी कोल-भील आसानी से जीवन निर्वाह की सुविधा इकट्ठी कर लेते हैं फिर शिक्षित एवं साधन संपन्न परिस्थितियों में रहने वाले लोगों के लिए तो स्वाभाविक निर्वाह की आवश्यकताएँ जुटाने में कठिनाई ही क्या हो सकती है। ऐसी अनुकूलता भगवान ने इसलिए पैदा की है कि मनुष्य थोड़ा समय, थोड़ा श्रम निर्वाह कार्यों में खर्च करने के उपरान्त अपनी शेष सारी प्रतिभा लोक-मंगल के लिए, ईश्वरीय प्रयोजन की पूर्ति के लिए लगा सके।

यही ईश्वरीय इच्छा मानव-जीवन की जिम्मेदारी है। बैंक मैनेजर, कलक्टर, कप्तान आदि बड़े अधिकारियों को जो सुविधाएँ होती हैं उनके पीछे लोक व्यवस्था का प्रयोजन ही छिपा रहता है। लोक व्यवस्था ही इन अधिकारियों की जिम्मेदारी है, यही उनका धर्म कर्तव्य है। इसे वे ठीक तरह पालन करते हैं तो सूत्र संचालकों की सहानुभूति एवं प्रशंसा के भागी बनते हैं और यदि वे इन जिम्मेदारियों का व्यतिक्रम करें, कर्तव्य को भूलकर प्राप्त सुविधाओं से लोक-हित की उपेक्षा कर अपना व्यक्तिगत स्वार्थ साधन करने पर उतर पड़ें तो यह बहुत ही बुरी बात होगी। उनकी आत्मा धिक्कारेगी, लोक निंदा होगी और सूत्र संचालकों की घृणा, नाराजगी एवं दंड नीति का भागी अवश्य बनना पड़ेगा।

देखना होगा कि कहीं हम ऐसा ही अनुचित तो नहीं कर रहे हैं? निर्वाह की छोटी सी, सीधी-साधी और सरल आवश्यकताओं को कहीं कृत्रिम रूप से हमने बढ़ा चढ़ा तो नहीं लिया है? विलासिता और अहंकार की दुर्बुद्धि से प्रेरित होकर हम ऐसा खरचीला और ढोंगी आवरण तो नहीं बना बैठे हैं जिसकी पूर्ति के लिए दिन-रात चिंतित रहना पड़ता

हो। दूसरों की बेवकूफी की देखा देखी हमने अपना जीवन ऐसा आडंबरी और अस्वाभाविक तो नहीं बना लिया है जिसको पूरा करने में सारा समय, सारा मस्तिष्क खरच हो जाए? लोभ-मोह और तृष्णा के पिशाचों ने कहीं हमें इतना अधिक तो नहीं जकड़ लिया है कि अधिक भोग और अधिक संग्रह का पागलपन निरंतर सिर पर सवार रहता हो? गुजारे की सुविधा होते हुए भी क्या हम तृष्णा की सुरसा के मुख-ग्रास बने रहते हैं? यदि हाँ, तो समझना चाहिए कि हम मानव जीवन के महान उत्तरदायित्वों का राजमार्ग छोड़कर किसी भयानक भूल के कंटकाकीर्ण बीहड़ वन में भटक रहे हैं।

जिस देश-समाज में हम पैदा हुए हैं उसके औसत जीवन स्तर की ही जिंदगी हमें जीनी चाहिए। यही नैतिकता एवं मनुष्यता का तकाजा है। जो प्रतिभा हमें मिली है उसके बलबूते पर जो उपार्जित किया जा सकता है उसे पूरी तरह अपने लिए ही खरच करने की छूट नहीं है। ऐसे तो बैल खेती करके अन्न उगाता है फिर वही उसे खाया भी करे। गाय-भैंस अपना दूध आप ही पिया करें, भेड़ें अपने कंबल आप ही ओढ़ा करें, पेड़ अपने फल आप ही खाया करें। बादल अपना पानी अपने ही घर जमा रखें। ऐसी अव्यवस्था चल पड़े तो संसार का सर्वनाश ही हो जाए। जो मनुष्य अपनी कमाई को अपने लिए ही प्रयुक्त करना चाहते हैं, उसे अनावश्यक मात्रा में जमा करना चाहते हैं वे ईश्वर का कानून तोड़ते हैं। परिग्रह और अपव्यय निश्चित रूप से दो बड़े पाप हैं, भले ही उन्हें कानून ने दंडनीय न माना हो।

हमें जीवनोद्देश्य की सफलता के लिए सबसे पहला कदम यह उठाना चाहिए कि तृष्णा और वासना के पिशाचों से छुटकारा पाने के लिए साहसपूर्ण प्रयत्न आरंभ करें। सादा जीवन जिएँ। उस स्तर का जैसा कि औसत भारतीय को जीना पड़ता हो। अमीरों के ढोंग को बचकाने लोगों की बाल बुद्धि समझें। जो संग्रह हो चुका है। उसे सत्कर्मों में लगावें और उतना ही कमाने की बात सोचें जितना निर्वाह के लिए आवश्यक है। उद्देश्य एक ही प्रधान रहता है। यदि भौतिक वैभव को लक्ष्य माना जाएगा तो परमार्थ के लिए न फुरसत मिलेगी, न इच्छा उठेगी और न सुविधा मिलेगी। यदि लक्ष्य आत्म-कल्याण को, ईश्वरीय प्रयोजन की पूर्ति को बना लिया जाए तो तृष्णा घट जाएगी और उतना ही उपार्जन

पर्याप्त प्रतीत होने लगेगा जितना निर्वाह के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है। धन-प्रधान जीवन लक्ष्य को बदल कर यदि उसे परमार्थ-प्रधान बनाया जा सके तो जीवन-क्रम में शेष सारा परिवर्तन सहज ही हो जाएगा। जन्मदिन के अवसर पर हमें अपने दृष्टिकोण को शरीर-प्रधान, भोगवादी, लोभी और मोह ग्रस्त न रहने देने का निश्चय करना चाहिए और जीवनोद्देश्य के अनुरूप विचारणा एवं क्रिया-पद्धति अपनाने का व्रत धारण करना चाहिए।

हमारी सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता का, सबसे बड़ी दूरदर्शिता का मार्ग यही है कि हम मानव जीवन जैसे अनुपम सौभाग्य का सदुपयोग करें और भगवान के उस पुण्य प्रयोजन को पूर्ण करें जिसके लिए प्राणियों में यह सर्वोच्च स्थिति हमें प्रदान की गई। यदि इस लक्ष्य की उपेक्षा की जाती है और बेवकूफ पड़ोसियों का अनुसरण करके तृष्णा और वासना से भरी गंदी और रद्दी जीवन-पद्धति अपनाई जाती है तो यही कहा जाएगा कि संसार की दृष्टि में भले ही सफल या चतुर हों आत्मा की दृष्टि से असफल एवं अविवेकी ही रहे।

जिसके अंतःकरण में यह निष्ठा गहराई तक जम गई कि 'मेरा जीवन किसी महान प्रयोजन के लिए है और उपार्जन शरीर-रक्षा भर की एक छोटी सी आवश्यकता है' वही व्यक्ति जीवन को सार्थक बनाने के लिए कुछ सोच और कुछ कर सकेगा। यदि निष्ठा उथली हुई, केवल जीभ से ही इस प्रकार के विचार दुहराए जाते रहे तो ढोंग या यश के लिए ही यदा कदा हुए तथाकथित परमार्थ विज्ञापित होंगे। आस्था के अभाव में वास्तविकता का उदय न होगा। मात्र ढोंग से न आत्मा को संतोष होगा और न घट-घटवासी परमात्मा प्रसन्न होगा।

जब दृष्टिकोण भौतिकवादी न रह कर अध्यात्मवादी बन जाता है तो हर इच्छा, हर कामना, हर भावना और हर प्रक्रिया ढाँचे में ढलने लगती है, तब बिना किसी योजना के सहज स्वाभाविक रीति से जीवन-क्रम में अधिकाधिक आध्यात्मिकता का समावेश होता चलता है और स्वतः इस बात की अनुभूति होती है कि अपना प्रत्येक क्षण, प्रत्येक जीवनोद्देश्य की पूर्ति के पथ पर तेजी से अग्रसर हो रहा है। ऐसी दशा में वही हम बनते हैं जो बनना चाहिए, वही हम करते हैं जो करना चाहिए। जीवनोद्देश्य की पूर्ति के लिए कुछ ठोस काम इसी स्थिति की मनोभूमि में संभव हो

सकता है। जन्मदिन के अवसर पर हमें अपने में ऐसा ही भावनात्मक परिवर्तन लाने का प्रयत्न करना चाहिए।

दूसरा कदम इस विचारणा को कार्य रूप में परिणत करने के लिए एक व्यवस्थित कार्य-पद्धति निर्धारित करने का है। हमें अपना सामान्य जीवन क्रम असामान्य दृष्टिकोण के साथ जीने की तैयारी करनी चाहिए। मामूली काम धंधा, बिक्री, दुकानदारी, नौकरी आदि करते हुए उत्कृष्ट जीवन जिया जा सकता है। यदि हम आदर्शवादिता की भावना से भरे हों तो हमारे सामान्य कार्य भी सृष्टि को सुंदर, समुन्नत और सुखी बनाने वाले परमार्थ सिद्ध हो सकते हैं। कार्य का फल भावना के अनुरूप होता है। यदि हम अपने साधारण जीवन क्रम में महान आदर्श एवं उद्देश्य का समन्वय कर लें तो वे सामान्य कार्य ही अपने उत्कृष्ट स्वरूप के कारण हमारे लिए पुण्य-परमार्थ की साधना जैसे और संसार के लिए कल्याणकारक हो जाएंगे। इसलिए दूसरा कार्य यह है कि हमें अपने हर कार्य में उत्कृष्टता का दृष्टिकोण समन्वित करना चाहिए। जो करें यह सोच कर करें कि यह सब हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिए नहीं वरन इस विश्व-वसुंधरा को अधिक सुंदर, अधिक समुन्नत, अधिक सुखी बनाने के लिए कर रहे हैं। यह भावना निश्चय ही हमारे हर क्रिया कलाप को आदर्श बना देगी।

पारमार्थिक जीवन जीने का शुभारंभ अपने व्यक्तित्व को उज्ज्वल, सुसंस्कृत, पवित्र एवं प्रखर बनाने से ही संभव हो सकता है। संसार को अच्छा बनाने के लिए हमें अपने आपको अच्छा बनाना चाहिए। अपने आपको हम जितना अच्छा बना लेते हैं उतना ही संसार का एक अंश उत्तम बन जाता है और वह शृंखला आगे बढ़कर एक से दूसरे में, दूसरे से तीसरे में बढ़ती हुई संसार को अधिकाधिक सुंदर बनाती चलती है। अपनी आंतरिक स्थिति को ऊँचा उठा कर हम वस्तुतः संसार की महानतम सेवा करने का श्रेय प्राप्त करते हैं।

हमारा व्यक्तित्व शरीर, मन और आत्मा इन तीन आधारों पर खड़ा है। इन तीनों को पवित्र एवं प्रकाशपूर्ण बनाने के लिए कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग की तीन साधनाओं का क्रम अपनाना पड़ता है। जीवन साधना का अर्थ है—अपनी प्रत्येक गतिविधि को आदर्शवादिता से परिपूर्ण रखना। कर्मयोगी बन कर शरीर को, ज्ञानयोगी बन कर मन को और

भक्तियोगी बन कर आत्मा को परिष्कृत किया जाता है। हमारी हर शारीरिक क्रिया कर्तव्यपालन के लिए, हर विचारणा सत्य और विवेक के प्रतिपादन के लिए और हर भावना आत्मीयता एवं प्रेम-प्रीति का अभिवर्द्धन करने के लिए हो तो समझना चाहिए कि शरीर, मन और आत्मा के तीनों ही आधार उस दिशा में अग्रसर हो रहे हैं जिसके लिए ईश्वर की इच्छा एवं प्रेरणा है। इसी मार्ग पर चल कर हम जीवनोद्देश्य की परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकते हैं।

इन तीनों योगाभ्यासों को यों तो हर घड़ी अपने विचार और कार्यों में उत्कृष्टताओं का समावेश करके ही पूरी तरह संपन्न किया जा सकता है, पर उनके लिए कुछ विशेष क्रिया-विधान भी निर्धारित हैं। इन्हें एक अभ्यास के रूप में प्रतिदिन कार्यान्वित किया जाए तो साधनामय जीवन जीने का उद्देश्य बहुत अंशों में पूरा हो सकता है।

१-कर्मयोग का जीवन-क्रम में समावेश इस प्रकार होता है कि हम अपनी प्रत्येक विचारणा और क्रिया-पद्धति पर कड़ी निगाह रखें और उसके जो दोष हों उनका निवारण और जिन सद्गुणों की कमी है उनका संवर्द्धन करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहा करें। अध्यात्म का हमारे जीवन के कण-कण में, क्षण-क्षण में समावेश होना चाहिए। पूजा की कोठरी में महंत बन जाएँ और बाजार में आते ही दुष्टता बरतने लेंगे यह दुर्मुही नीति हमारी आत्मिक प्रगति में तनिक भी सहायक सिद्ध नहीं हो सकती। उपासना एक आत्मिक व्यायाम की तरह थोड़ी देर की जा सकती है, पर साधना तो हर घड़ी करते रहने की चीज है। आत्मकल्याण के लिए साधना का मार्ग अपनाना पड़ता है। उपासना तो साधना का बहुत छोटा सा अंग है। जीवन की सार्थकता का लक्ष्य अकेली उपासना के बल पर नहीं हो सकता उसमें साधना का समावेश होना ही चाहिए। इस जीवन-साधना का नाम ही कर्मयोग है। हमारी प्रत्येक क्रिया यदि आदर्शवादिता के अनुरूप ढलने लगे तो समझना चाहिए कि हम कर्मयोग की साधना कर रहे हैं।

कर्मयोग की एक महत्वपूर्ण साधन प्रक्रिया यह है कि 'हर दिन को एक नया जन्म और हर रात को एक नई मृत्यु' समझने की निष्ठा को अंतःकरण में गहराई तक समाविष्ट किया जाए। प्रातःकाल जैसे ही आँख खुले, चारपाई पर पड़े-पड़े ही यह भावना की जाए कि आज का दिन एक

नया जन्म है, इसे अच्छे ढंग से व्यतीत करेंगे। इस संदर्भ में दिनभर की योजना बना लेनी चाहिए कि आज अपने समय और धन का व्यय किस प्रकार करेंगे। एक क्षण भी व्यर्थ बरबाद न होने देंगे। सारा समय उपयुक्त कार्यों में सदुपयोग करने की दिनचर्या बनाई जाए, साथ ही यह भी ध्यान रखा जाए कि न तो अनावश्यक कार्यों में एक पाई खरच होने दें और न उपयोगी कार्यों में रत्ती भर भी कंजूसी बरतें। धन और समय यह दो ही शक्तियाँ मनुष्य के पास सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। उन्हें अनुपयुक्त रीति से खरच न होने देकर उपयुक्त कार्य में लगाया जा सके तो जीवन की सार्थकता का पथ सहज ही प्रशस्त हो सकता है। अस्तु प्रातः उठते ही दिनभर की ऐसी योजना, दिनचर्या बना लेनी चाहिए जिसमें आदर्शवादिता का, उत्कृष्टता का पूरा-पूरा समावेश हो। इस दिनचर्या का कड़ाई के साथ पालन करने का निश्चय भी उसी समय कर लेना चाहिए। वर्तमान स्थिति में आदर्शवादिता का जितना समावेश जीवन-क्रम में हो सके आरंभ में उतना ही रखें। उच्च स्तर पर आज ही पहुँच सकना संभव न हो तो धीरे-धीरे चलें। धीरे-धीरे कदम बढ़ावें, दिनचर्या में उतनी आदर्शवादिता समन्वित करें जितनी आज की स्थिति में संभव हो। किंतु जो निश्चय कर लिया जाए उसे कड़ाई से पालन अवश्य करें। संकल्पों को पूरा करना, यही तो आत्मबल बढ़ाने का एकमात्र अभ्यास है। 'निश्चय करना और उन्हें अधूरे छोड़ना' यह दुर्बलता ही मनोबल को दिन-दिन गिराती चली जाती है। इसलिए आत्मबल बढ़ाने के अभ्यास के रूप में प्रातःकाल किए हुए निश्चयों को दिनभर कठोरतापूर्वक पालन करते रहने के लिए तत्पर तो होना ही है।

मनुष्य में अनेक दोष भरे रहते हैं और अनेक गुणों का अभाव रहता है। हमें निरंतर इन्हीं दोनों समस्याओं को हल करते रहना है। जो दोष हैं उन्हें हटाया जाए और जिन गुणों की कमी है उन्हें बढ़ाया जाए। ये उभयपक्षीय चेष्टाएँ यदि नियमित और व्यवस्थित रीति से चलती रहें तो हमारी कर्मयोग साधना द्रुतगति से सफलता की ओर अग्रसर होती रहेगी।

आमतौर से लोग कानूनी अपराधों को ही पाप समझते हैं। चोरी, डकैती, हत्या, व्यभिचार, बेईमानी आदि पुलिस की पकड़ में आने वाले अपराध ही पाप माने जाते हैं और नशेबाजी, जुआ, झूठ आदि बुराइयों को ही बुराई समझते हैं। यदि ये दोष अपने में नहीं हैं तो अपने आपको निष्पाप मान लेते हैं। आत्मकल्याण का उद्देश्य इतनी मोटी परिभाषा की

परिधि में रहने से परिपूर्ण नहीं हो सकता। आध्यात्मिक दृष्टि से वे दुर्गुण भी पाप हैं जो हमारे व्यक्तित्व के विकास में बाधा बनकर अड़े हुए हैं। हमें इनका भी निवारण करना होगा। आलस्य, प्रमाद, गंदगी, कटुभाषा, आवेश, छिद्रांवेष्टन, ईर्ष्या, चुगली, निंदा, हरामखोरी, पक्षपात, स्वार्थपरता, अनुदारता, लोभ, परिग्रह, तृष्णा, वासना, असंयम, लापरवाही, भीरुता, कायरता, आशंका, अविश्वास, उच्छृंखलता, कृतघ्नता जैसे अनेक मानसिक दोष-दुर्गुण जो भले ही छुपे रहें, भले ही उपेक्षणीय समझे जाएँ पर अपने व्यक्तित्व के विकास में ही सबसे बड़े बाधक हैं। हजार शत्रु मिलकर हमारा उतना अहित नहीं कर सकते जितना ये मन की गुफा में छिपकर बैठे हुए अविज्ञात, अदृश्य शत्रु करते हैं। इसलिए अपने दोष-दुर्गुणों का निराकरण करने का अभियान चलाते हुए हर कर्मयोगी को बारीक दृष्टि से अपने क्रिया कलाप पर दृष्टि रखनी चाहिए कि उन आंतरिक शत्रुओं का कितना प्रभाव अपने ऊपर है और वे जब कभी अपना आधिपत्य जमाने का प्रयत्न करें उन्हें तुरंत ही झिड़क देना चाहिए, लात मारकर भगा देना चाहिए। आंतरिक दोष-दुर्गुणों से निरंतर संघर्ष करते रहना ही वास्तविक महाभारत है। भगवान ने गीता में अर्जुन को इसी संग्राम में कटिबद्ध रहने के लिए प्रोत्साहित किया है। यही कर्मयोगी की आत्मा है। गीता के इस संदेश को भगवान द्वारा अपने लिए भी किया गया निर्देश मानना चाहिए और आत्मशोधन और आत्मसुधार के धर्मयुद्ध में निरंतर जुटे रहना चाहिए।

इन दुर्गुणों की अभावपूर्ति स्वभाव में, जीवनक्रम में सद्गुणों के समावेश से ही हो सकती है। प्रयत्न यह किया जाना चाहिए कि हमारी दैनिक गतिविधियों में सद्गुणों की मात्रा निरंतर बढ़ती रहे। पुरुषार्थ, परिश्रम, नियमितता, स्वच्छता, मधुर भाषण, मानसिक संतुलन, धैर्य, नम्रता, गुणग्राहकता, आत्मीयता, निष्पक्षता, न्याय-प्रियता, उदारता, संयम, सज्जनता, सच्चरित्रता, शिष्टता, सतर्कता, शौर्य, साहस, श्रद्धा, कृतज्ञता आदि सद्गुणों का अपनी विचारणा एवं क्रियापद्धति में जितना अधिक समावेश होता चलेगा उतनी ही आंतरिक महानता बढ़ेगी और जीवन-लक्ष्य की पूर्णता सरल होती चली जाएगी। इस अभिवर्द्धन का प्रयास भी हमें अहिर्निश करना चाहिए। इस संदर्भ में जितनी अधिक तत्परता बरती जाए समझना चाहिए कि उतनी ही कर्मयोग की साधना का योगाभ्यास सफलतापूर्वक चल रहा है।

जीवन-निर्वाह के लिए हमें अनेक प्रकार के छुटपुट काम करने पड़ते हैं। उन्हें प्रसन्नतापूर्वक करें पर उनके पीछे दृष्टिकोण ऊँचा रखें। यही सोचते रहें कि इन कार्यों को पवित्र धर्म कर्तव्य की पूर्ति के लिए, लोक मंगल के लिए, भगवान की सभी जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए किया जा रहा है, लोभ, मोह, तृष्णा और वासना से प्रेरित होकर नहीं। स्वार्थपरता की संकीर्णता यदि दृष्टिकोण में से निकाल दी जाए और उसमें कर्तव्यपालन की भावना जोड़ दी जाए तो सामान्य से दीखने वाले छुटपुट काम ही उच्चकोटि के पुण्य परमार्थ बन सकते हैं। दृष्टिकोण ही सब कुछ है। मान्यताएँ बदलीं कि सब कुछ बदल जाता है। नरक को स्वर्ग में और पतन को उत्थान में परिणत कर देने का पूरा-पूरा श्रेय अपने दृष्टिकोण को ही है। अस्तु, हमें हर घड़ी यह प्रयत्न करना चाहिए कि हमारा प्रत्येक विचार और प्रत्येक कार्य उच्च आदर्शों से, पुनीत भावना से ओत-प्रोत हो। कर्मयोगी का भी आहार-विहार, रहन-सहन सामान्य लोगों जैसा होता है पर उसकी विचारणा, मान्यता एवं दृष्टि उच्चस्तर की होती है। हमें अपनी मनोभूमि को इसी प्रकार की बनाने के लिए जुट जाना चाहिए। अपने हर क्रिया कलाप के पीछे ऐसा ही दृष्टिकोण जोड़ने का प्रयत्न करना चाहिए। इस दिशा में जितनी प्रगति होती चलेगी हम जीवन लक्ष्य के उतने ही निकट पहुँचते चले जाएँगे।

रात्रि को सोते समय हमें एक जीवन की समाप्ति का अनुभव करना चाहिए। आत्मिक प्रगति की दिशा में प्राप्त हुई सफलता के लिए भगवान को धन्यवाद देते हुए, भूलों के लिए पश्चाताप करते हुए निद्रा माता की गोद में शांतिपूर्वक, संतोष और आनंद अनुभव करते हुए, निमग्न हो जाना चाहिए। हर दिन का जीवनक्रम इसी ढर्रे पर चलने लगे तो समझना चाहिए कि कर्मयोग की साधना ठीक तरह होती चली जा रही है और इस मार्ग पर चलते हुए हम निश्चित रूप से मनुष्य जीवन के ईश्वरीय प्रयोजन को पूर्ण कर लेंगे।

(२) ज्ञानयोग दूसरी जीवन साधना है। विचारों में उत्कृष्टता, आदर्शवाद की ओर चलने की प्रेरणा, सत्य और असत्य की गुत्थी सुलझाने वाली विवेकशीलता जो साहित्य हमें प्रदान कर सके उसको पढ़ना स्वाध्याय है। ऐसे ही विचारों को सुनना सत्संग है। हमारे दैनिक क्रम में इस प्रकार के स्वाध्याय सत्संग के लिए आवश्यक स्थान होना

चाहिए। शरीर पर नित्य मल जमता है उसकी सफाई के लिए कुल्ला, दातौन, स्नान आदि की रोज व्यवस्था करनी पड़ती है। घर, बर्तन, कपड़े, फर्नीचर आदि को रोज साफ करना पड़ता है। इसी प्रकार संसार के दूषित वातावरण का जो दुष्प्रभाव हमारे मन पर जमता है उसका परिष्कार करने के लिए प्रतिदिन स्वाध्याय की आवश्यकता पड़ती है। जिस प्रकार शरीर को आहार की जरूरत रहती है उसी प्रकार मस्तिष्क को भी भावनात्मक पोषक आहार देना होता है। यदि आत्मा को मलीन, वुभुक्षित और दुर्बल नहीं रखना है तो स्वाध्याय का साधन हमें अनिवार्य रूप से जुटाना होगा। विवेक की स्थिरता और उत्कृष्टता की अभिवृद्धि के लिए ज्ञानयोग की साधना को अपनाए बिना किसी प्रकार काम नहीं चल सकता।

स्वाध्याय के नाम पर कई व्यक्ति हजारों वर्ष पूर्व की स्थिति में लिखी गई कथा-कहानियाँ हर रोज रटते रहते हैं। ये तथाकथित स्वाध्यायशील बेकार का कूड़ा-करकट ही उलटते-पलटते रहते हैं। इससे किसी का कोई भला नहीं हो सकता। आज की परिस्थितियों के अनुरूप जो उत्कृष्टता का पथ-प्रदर्शन कर सके ऐसा विवेक संगत, प्रकाश एवं प्रेरणा से परिपूर्ण साहित्य ही इस आवश्यकता को पूरा करेगा। इसलिए स्वाध्याय के लिए जो कुछ अपनाया जाए उसे भली प्रकार परख लेना चाहिए कि जो पढ़ा-सुना जा रहा है वह उपर्युक्त प्रयोजनों को पूरा करता है या नहीं। भ्रांतियों में उलटे उलझा देने वाले विचारों को तो अभक्ष्य विषैले आहार की तरह त्याज्य ही समझना चाहिए।

दैनिक नित्यकर्म में स्वाध्याय का समावेश करके हमें ज्ञानयोग की महती आवश्यकता पूर्ण करनी चाहिए, पर काम इतने से ही नहीं चलेगा। व्यक्ति और समाज की दुर्गति का एकमात्र कारण सद्भावनाओं एवं सद्विचारों का अभाव ही है। आज इसी दुर्भिक्ष के कारण संसार में सर्वत्र त्राहि-त्राहि मची हुई है। हमें इस अभाव की पूर्ति करनी चाहिए और जन-मानस में सद्विचारों का बीजारोपण करने के लिए सद्ज्ञान के प्रकाश को अधिकाधिक व्यापक बनाना चाहिए।

युग निर्माण योजना द्वारा इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए इस युग का सर्वोपरि ज्ञानयज्ञ आरंभ किया गया है। उसमें सम्मिलित होकर हम मानव-जाति की सबसे बड़ी कठिनाई को, सद्भावना के अकाल को दूर

करने का पुण्य परमार्थ कर सकते हैं। शहद की मक्खियाँ जिस प्रकार फूलों का सार भाग अपने छत्ते में एकत्रित कर लेती हैं और उस मधु का सेवन करने वाला सहज ही लाभान्वित हो सकता है उसी प्रकार की पुण्य प्रक्रिया युगनिर्माण योजना के अंतर्गत चल रही है। अत्यंत सस्ता, सर्वांग सुंदर और प्रखर प्रकाश से परिपूर्ण साहित्य इसी प्रयोजन के लिए विनिर्मित किया जा रहा है। प्रतिदिन एक रुपया ज्ञान यज्ञ के लिए जमा करने चाहिए। उस पैसे से घर में एक ज्ञान मंदिर बनाना चाहिए। अपने परिवार का एक भी व्यक्ति ऐसा न बचे जो इस ज्ञान-गरिमा का लाभ नहीं उठाता है। घर में बिना पढ़े हों उन्हें सुनाना चाहिए। इस प्रकार घर में सदज्ञान का प्रकाश उत्पन्न कर हम अपने परिवार की अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं नितांत आवश्यक सेवा कर सकते हैं।

घर में जो ज्ञान-मंदिर स्थापित किया गया है, एक रुपया रोज जमा करके जो पत्रिकाएँ तथा ट्रेक्ट मँगाए जा रहे हैं उन्हें अपने मित्रों, पड़ोसियों, परिचित साथियों को पढ़ाने के लिए, उनके घर जाकर साहित्य देने और वापस लाने के लिए, एक घंटा समय सुरक्षित रख लेना चाहिए। इस प्रकार अपने प्रभाव क्षेत्र के दस बीस व्यक्तियों तक सदज्ञान का यह प्रकाश पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए। ज्ञान-यज्ञ का यही स्वरूप है। प्रतिदिन एक रुपया खर्च करते रहना कोई इतना बड़ा भार नहीं जिसे उठाया न जा सके। पर इतने मात्र छोटे से त्याग से हम व्यक्ति और समाज के नव निर्माण में, युगनिर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं, यह युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इसकी पूर्ति में हमें लापरवाही, उपेक्षा या अनिष्टा नहीं दिखानी चाहिए। ज्ञानयोग की साधना के लिए स्वयं का नियमित स्वाध्याय और दूसरों तक सदज्ञान का प्रकाश पहुँचाते रहने का क्रम बनाकर हम सहज ही संसार का श्रेष्ठतम उपकार कर सकने में समर्थ हो सकते हैं।

ज्ञानयोग के द्वारा ही दुःख दारिद्र्य एवं शोक-संताप में डूबे हुए समाज को उबारा जा सकेगा। संसार के समस्त कष्टों का एक ही कारण है-अज्ञान। अन्यथा मनुष्य के पास स्वयं इतनी सामर्थ्य है कि वह अपना ही नहीं, अपने संपर्क में आने वाले अन्य सभी का जीवन श्री-समृद्धि, सुख-शांति और आनंद-उल्लास से परिपूर्ण कर सकता है। पथ-भ्रष्ट मानव को सन्मार्ग पर चलाया जा सके तो उससे बड़ा उपकार

और कोई नहीं हो सकता। दूसरों की आर्थिक सहायता से नहीं वरन अपनी प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत करने से ही मनुष्य की समस्याएँ हल होती हैं, अतएव दान का सर्वश्रेष्ठ तरीका ज्ञानदान है। यह बहुत महत्वपूर्ण है। आज मानवजाति को सद्ज्ञान की सबसे बड़ी आवश्यकता है। विघटनात्मक विचारधारा को सृजनात्मक दिशा में भेजा जा सके तो देखते-देखते सारी परिस्थितियाँ बदल सकती हैं। क्रांतियों में सर्व प्रधान विचार-क्रांति है। विचार बदल जाने से हाड़-मांस का पुतला मनुष्य भी देवता बन सकता है और यह पाँच तत्त्वों से बनी दुनियाँ स्वर्गीय उल्लास से ओत-प्रोत हो सकती है। युग का परिवर्तन विचार क्रांति से ही संभव होगा।

इस महान प्रयोजन की पूर्ति के लिए युग निर्माण योजना द्वारा ज्ञानयज्ञ का ऐतिहासिक अभियान आरंभ किया गया है। इसे सफल बनाने के लिए अपनी सामर्थ्यानुसार जितना भी योगदान किया जा सके उसे सच्चे अर्थों में सार्थक परमार्थ कहा जाएगा। हम यह प्रयत्न करें कि अपनी क्षमता, प्रतिभा और सुविधा में से एक अंश इसके लिए देते रहने की उदारता अपनाएँ। यों अलग-अलग भी सब कार्य अपने ढंग से अपने क्षेत्र में करने चाहिए पर साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि विश्वव्यापी महान प्रयोजनों की पूर्ति सामूहिक, संगठित एवं केंद्रित प्रक्रिया द्वारा ही संपन्न हो सकती है। रीछ-वानरों ने श्रीराम के असुर विजय अभियान में अपना योगदान देकर उसे सफल बनाया था। गोवर्द्धन उठाने में ग्वाल-बाल श्रीकृष्ण के सहयोगी बने थे। इन ग्वाल बालों ने संगठित प्रयत्न की उपेक्षा कर अपनी-अपनी अलग खिचड़ी पकाई होती तो उससे अभीष्ट प्रयोजन पूरा न हो सका होता। हनुमान बड़े शक्तिशाली थे पर उनकी शक्ति तभी सार्थक हुई जब वे राम अभियान के एक अंग बन गए। यदि वे अपनी गदा अलग ही फटकारते फिरते और सोचते सारा यश, सारा श्रेय उन्हें अकेले ही मिले तो उनकी यह क्षुद्रता न उनके लिए लाभदायक सिद्ध होती और न उस महा अभियान को सफल होने देती। इसलिए हम अपनी परमार्थ भावनाओं को इस युग के महानतम ऐतिहासिक अभियान में 'केंद्रीय ज्ञान-यज्ञ' में समर्पित करें तो बूंद जिस तरह अपना अस्तित्व समुद्र को समर्पित कर समुद्र बन जाती है उसी प्रकार हमारा समर्पण भी विश्व-मानव के

पुनरुत्थान का श्रेय भाजन बन सकता है, युग निर्माण की महान भूमिका प्रस्तुत कर सकता है।

३-भक्तियोग का अभ्यास करने के लिए हमें प्रतिदिन नियमित रूप से भगवान की उपासना करनी चाहिए और नाम रूप का जप ध्यान करने के अतिरिक्त प्रेम-भावना का भी अधिकाधिक विकास करना चाहिए। प्रेम ही भाव भूमिका में परमेश्वर की प्रत्यक्ष अनुभूति है। जिसके अंतःकरण में जितना निःस्वार्थ, जितना उत्कृष्ट प्रेम उमड़ता है वह परमेश्वर के उतना ही निकट है। परमात्मा का गायत्री माता के रूप में ध्यान करके उनके साथ परस्पर प्रेम-क्रीड़ा का आदान-प्रदान करके हम उस प्रीतिमय अनुभूति का रसास्वादन करते हैं। यह एक व्यायाम अभ्यास है। यही प्रेम भावना अंतःकरण में अमृत निर्झर की तरह जब अविच्छिन्न रूप से प्रभावित होती है तो उसके संपर्क में आने वाले सभी व्यक्ति, सभी पदार्थ स्नेहासिक्त, आत्मीयता तथा प्रेम-प्रीति से भरे परम मंगलमय दृष्टिगोचर होने लगते हैं। यही भक्तियोग है। प्राणिमात्र में समाए हुए परमेश्वर से जो परिपूर्ण प्रेम कर सकता है, उनके साथ उदारता और आत्मीयता से भरा व्यवहार कर सकता है वही सच्चा भक्त है। इस भक्तियोग को रोम-रोम में ओत-प्रोत करने के लिए आरंभिक अभ्यास के रूप में जो भक्त-भगवान के बीच प्रेमवाद की साधना बताई गई है उसे हमें तत्काल आरंभ कर देना चाहिए। इसी मार्ग पर चलते हुए मीरा ने, शबरी ने, सूरदास ने, तुलसी ने, हनुमान ने, सुदामा ने, अर्जुन ने, गोपियों ने, ग्वाल-बालों ने, रीछ-वानरों ने भगवान को अपना साथी, सहचर बनाने की सफलता प्राप्त की थी। व्यक्ति की महानता उसकी इस प्रेम-भावना में ही है। वह अपने आप में अपनी अनुभूति के कारण हर घड़ी आनंद विभोर रहता है, भले ही दूसरे लोग उससे प्रेम न करें। यह प्रेम भावना ही व्यावहारिक जीवन में दया, करुणा, आत्मीयता, उदारता, सेवा, सज्जनता, परमार्थ परायणता के रूप में परिलक्षित होती है। इसी सत्प्रवृत्ति के विकास से समाज तथा संसार की समस्त समस्याओं का समाधान होकर चिरस्थायी शांति, समृद्धि और प्रगति का पथ प्रशस्त हो सकता है। धरती पर स्वर्ग के अवतरण का, रामराज्य का लक्ष्य इस प्रेम-भावना के विकास द्वारा ही संभव होगा। जन्मदिन के अवसर पर इस भक्तियोग का शुभारंभ हमें करना चाहिए। यदि अब तक हमारी उपासना नियमित रूप से नहीं चलती रही है तो अब

जन्मदिन की शुभ घड़ी से उसे आरंभ कर ही देना चाहिए। जिस परमात्मा के हमारे ऊपर अपार उपकार हैं, उसका पंद्रह मिनट स्मरण भी न करें, धन्यवाद भी न दें, उसके पास बैठकर अपनी कहने और उसकी सुनने के लिए जरा सा समय भी न निकालें तो यह बड़ी कृतघ्नता होगी। हमें इस पाप से बचना ही चाहिए। किसी प्रकार थोड़ा समय उपासना के लिए निकाल ही लेना चाहिए। यदि इच्छा सच्ची होगी तो अवसर भी मिलेगा और मन भी लगेगा। ईश्वर की समीपता, उपासना जीवन को सुविकसित एवं सार्थक बनाने में निश्चित रूप से बड़ी सहायक सिद्ध होती है। यदि अब तक इस संदर्भ में नियमितता नहीं बरती गई है तो अब इस भूल को सुधार लेना चाहिए।

युग निर्माण के शत सूत्री कार्यक्रमों में ऐसी अनेक योजनाएँ हैं जिन्हें विभिन्न स्तर के व्यक्ति अपनी कार्यक्षमता और स्थिति के अनुसार अपने क्षेत्र में कार्यान्वित करके अपनी परमार्थ वृत्ति को परिपुष्ट करने का अभ्यास कर सकते हैं। महान गुणों का अभिवर्द्धन महान कार्य करने से ही प्रतीत होता है। सद्भावनाओं की परिपुष्टि सत्कर्मों से ही होती है। उत्तम विचार और उत्तम कार्य मिलने पर ही सुसंस्कार बनते हैं और उन सुसंस्कारों की मात्रा के अनुसार ही आत्मबल की वृद्धि होती है। इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर हमें कुछ न कुछ श्रम, कुछ न कुछ धन परमार्थ कार्यों के लिए लगाना ही चाहिए। पानी में घुसने पर ही तैरना आता है। परमार्थपूर्ण, लोक-मंगल के सत्कर्म करने से ही वह प्रयोजन पूरा होता है जिसके लिए हमें मनुष्य शरीर मिला है। इस प्रकार के पुण्य प्रयोजनों की उपेक्षा कर यदि हम थोड़ा सा पूजा-पाठ कर लेना मात्र आत्म-कल्याण की पूर्ति के लिए पर्याप्त मानते रहे हों, कोई छुट-पुट धार्मिक कर्मकांड या तीर्थ स्नान आदि करके अपने को ईश्वर भक्त या धर्मात्मा मान लेते रहें हों तो इस भ्रम को तुरंत निकाल देना चाहिए। इस आत्मप्रवंचना में रत्ती भर भी सार्थकता नहीं है। पूजा-पाठ, कथा-कीर्तन, तीर्थ-स्नान या अमुक कर्मकांड का प्रयोजन सिर्फ इतना मात्र है कि वे हमारी परमार्थ भावना को, आंतरिक उत्कृष्टता को जगावें। वे जगों या नहीं इसकी कसौटी यही है कि हम स्वार्थ प्रयोजनों में ही दिन रात लगे रहने की संकीर्णता से ऊँचे उठकर लोक-मंगल के परमार्थ प्रयोजन में तत्पर होने की ईश्वर-इच्छा को पूर्ण करने में संलग्न हुए या नहीं। जिसकी पूजा किसी प्रयोजन को पूरा

कर सके उसे ही सार्थक समझना चाहिए। अन्यथा ईश्वर को खुशामद पसंद समझकर उसकी मनुहार करते रहने के पीछे हमारा अज्ञान ही काम कर रहा होगा जो चापलूसी द्वारा मतलब निकाल लेने पर भरोसा करता है। ईश्वर की प्रसन्नता का आधार है उत्कृष्ट व्यक्तित्व और उसकी द्वारा किए हुए पारमार्थिक सत्कर्म। हम इस यथार्थता को जितनी जल्दी समझें उतना ही अच्छा है।

अध्यात्म का वास्तविक स्वरूप ही हमारे आत्मकल्याण का आधार बन सकता है। अतएव जन्मदिन के अवसर पर हमें सच्चा अध्यात्मवादी, सच्चा ईश्वर भक्त और मनुष्य बनने का प्रयत्न करना चाहिए और इसके लिए आदर्शवादिता एवं उत्कृष्टता का अधिकाधिक समावेश अपनी विचारणा एवं क्रिया-पद्धति में करने का प्रयत्न करने की कोशिश करना चाहिए।

जन्मदिन के अवसर पर आपको क्या विचारना चाहिए इसका आधार इस पुस्तिका में संकेत रूप से दिया गया है। यह आपका काम है कि उन्हें अपनी स्थिति के अनुरूप व्यावहारिक जीवन में समाविष्ट करने की योजना बनाएँ और उस पर दृढ़ता पूर्वक चलने का निश्चय करें। जीवन का उद्देश्य, स्वरूप और उसका सदुपयोग किस प्रकार संभव है इस पर हमें बार-बार विचार करना चाहिए और यह सोचना चाहिए कि जो बहुमूल्य समय शेष है उसे किस रीति-नीति के साथ व्यतीत किया जाए ताकि जीवन समाप्त होने पर पश्चाताप का भागी न बनना पड़े। इस दिशा में यदि हम गंभीरता पूर्वक विचार करेंगे तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि जीवन के संबंध में अपनी वर्तमान भौतिकवादी मान्यता को बदलना और साधनात्मक जीवन जीने के लिए कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग की साधना करना आवश्यक है। प्रस्तुत पुस्तिका इस संदर्भ में आपको कुछ प्रकाश एवं सहयोगी देगी ऐसा विश्वास है। आप जितना ही प्रस्तुत तथ्यों पर विचार करेंगे उतना ही जीवन को सफल एवं सार्थक बनाने के लिए आवश्यक उत्साह एवं साहस प्राप्त करेंगे।

